IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 2, Issue 1, May 2023
Impact Factor: 7.301

मौलिक अधिकारों का अभिभावक सर्वोच्च न्यायालय : केस स्टडी

डॉ गौरव त्रिपाठी

असि० प्रो०, राजनीति विज्ञान

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुसाफिरखाना, अमेठी (उत्तर प्रदेश)

tripathydrgaurav.gdc@gmail.com

सारांश

मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिए सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक उपचारों के अधिकार दिये गये हैं। संविधान निर्माताओं को यह डर था कि राज्य अपनी शक्ति के माध्यम से नागरिक अधिकारों का उल्लंघन कर सकती है । सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारो की रक्षा के लिए उचित रिट जारी करती है। जब जब नागरिक अधिकारो को राज्य के कानूनो ने न्यून करने का प्रयास किया तब तब नागरिको ने सर्वोच्च न्यायालय का संरक्षण प्राप्त किया। चंपकम दर्राईराजन वाद का ही परिणाम था कि भारतीय संविधान मे प्रथम संशोधन करना पडा। केशवानंद भारती वाद आज तक का सबसे बडी पीठ द्वारा निर्णीत वाद है जिसमें संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत न्यायालय ने प्रतिपादित किया। पी यु सी एल वाद मे न्यायालय ने नागरिकों के निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार की श्रेणी प्रदान करते हुए टेलीफोन टेपिंग पर नियम जारी किये। मेनका गांधी वाद, इंद्रा साहनी वाद, एम नागराज वाद, अरूणा शानवाग वाद आदि के निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय मे विधि के शासन की अवधारणा को मजबूत किया तथा भारतीय लोकतंत्र व शासन व्यवस्था को मर्यादित व उत्तरदायी बनाया।

DOI: 10.48175/IJARSCT-3601A

मुख्य शब्द : सर्वोच्च न्यायालय, मूल ढांचे का सिद्धांत, मंडल आयोग, ई डब्ल्यू एस.,निजता, अधिकार, विधि का शासन, मांग, रिट, पीठ, संविधान संशोधन।

प्रस्तावना

मौलिक अधिकार राज्य के खिलाफ व्यक्ति को दिए गए अधिकार हैं जिनका गारंटर सर्वोच्च न्यायालय है। मौलिक अधिकार व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियाँ व वातावरण उपलब्ध कराते हैं जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक विकास हो पाता है। संविधान निर्माताओं ने भारत में संविधान निर्माण के समय ही कुछ अधिकारों को संविधान के भाग तीन में समाहित कर दिया जिन्हें कोई छीन नहीं सकता है। संविधान के अनुच्छेद ३२ के द्वारा अधिकारों का संरक्षण भी कर दिया।[1] आज जब हम अखबारों को पढ़ते हैं तो हर दिन कोई न कोई व्यक्ति अपने अधिकारों की सुरक्षा हेतु सर्वोच्च न्यायालय पहुँचता रहता है। सर्वोच्च न्यायालय नागरिक अधिकारों को पूर्ण रूप से संरक्षित करता हुआ दिखलाई पड़ता है। यहाँ पर हम कुछ ऐसे वादों की परिचर्चा करेंगे जो नागरिकों व व्यक्तियों के मूल अधिकारों को अभिवृद्धि करते हैं।[2]

चंपकम दुर्राइराजन वाद

चंपकम मद्रास की रहने वाली थी। यह इंजीनियरिंग व मेडिकल की तैयारी करने वाली विद्यार्थी थी। मद्रास सरकार के आदेश १९४८ में सरकारी इंजीनियरिंग व मेडिकल कॉलेज में प्रवेश में आरक्षण लागू कर दिया गया। चंपकम का नंबर अधिक होते हुए भी प्रवेश न मिल सका। आरक्षण को चुनौती दी गई कि यह अनुच्छेद १५ एवं २९(२) का उल्लंघन करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने आरक्षण आदेश को रद्द कर दिया। परिणामस्वरूप सरकार ने प्रथम संविधान संशोधन कर अनु १५(४) जोड़ा जिसका कहना है कि राज्य सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े लोगों हेतु विशेष उपबंध कर सकती है।[3]

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 2, Issue 1, May 2023
Impact Factor: 7.301

केशवानंद भारती वाद

केशवानंद भारती मूलतः केरल के रहने वाले एडनीर मठ के प्रमुख थे। केरल सरकार ने एक कानून बनाया जो केरल भूमि सुधार से संबंधित था। यह कानून मठ आदि की संपत्ति के प्रबंधन पर प्रतिबंध लगाता था। इस कानून को केशवानंद भारती ने सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में संविधान के मूल ढाँचे का सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसके अन्तर्गत संसद को संविधान में संशोधन का अधिकार तो दिया लेकिन उसके मूल ढाँचे या मूल सिद्धांतों को किसी भी तरह बदलने का अधिकार समाप्त कर दिया।[4] मूल ढाँचे की अवधारणा में न्यायालय ने संसद की संशोधन शक्ति की सीमा तय की। संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति है, लेकिन यह शक्ति असीमित नहीं है और मूल ढाँचे में कोई बदलाव नहीं कर सकती। इस निर्णय ने २४वें संविधान संशोधन को वैध ठहराया, लेकिन २५वें संशोधन को आंशिक रूप से अवैध माना तथा न्यायालय की स्वतंत्रता पर बल देते हुए संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित किया। यह फैसला तेरह न्यायमूर्तियों की पीठ ने ७:६ से दिया।[5]

मिनर्वा मिल्स केस

मिनर्वा मिल्स केस (१९८०) भारतीय संविधान के इतिहास का एक मील का पत्थर है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने संविधान के मूल ढाँचे के सिद्धांत को मज़बूत किया। यह फैसला सुनाया कि संसद संविधान में संशोधन कर सकती है, लेकिन उसके मूल ढाँचे को नष्ट नहीं कर सकती, और ४२वें संविधान संशोधन के उन हिस्सों (जैसे न्यायिक समीक्षा को खत्म करना) को अवैध करार दिया जो असीमित शक्ति देते थे। यह स्थापित करते हुए कि मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के बीच संतुलन ज़रूरी है और न्यायिक समीक्षा संविधान का अभिन्न अंग है।[6] बेंगलुरु की मिनर्वा मिल्स कंपनी के खराब प्रबंधन के कारण सरकार ने १९७१ में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया और प्रबंधन नेशनल टेक्सटाइल कॉरपोरेशन को सौंप दिया। कंपनी ने इस राष्ट्रीयकरण को चुनौती दी, जिसे बाद में ४२वें संविधान संशोधन (१९७६) के प्रावधानों (जैसे अनुच्छेद ३१ग के तहत) के

कारण उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया, क्योंकि संशोधन ने न्यायिक समीक्षा को रोका था। याचिकाकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर ४२वें संशोधन की संवैधानिकता को चुनौती दी।[7] मूल ढाँचे का सिद्धांत में अदालत ने दोहराया कि संसद के पास संविधान संशोधन की शक्ति सीमित है और वह संविधान के मूल ढाँचे जैसे न्यायिक समीक्षा, मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक सिद्धांतों के बीच संतुलन को नहीं बदल सकती। ४२वें संशोधन के प्रावधानों को रद्द करना: अनुच्छेद ३६८ के खंड (४) और (५), जो न्यायिक समीक्षा को रोकते थे, को असंवैधानिक घोषित किया गया क्योंकि ये संविधान के मूल ढाँचे पर हमला थे। मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक में संतुलन: कोर्ट ने कहा कि मौलिक अधिकार (भाग III) और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (भाग IV) संविधान के दो पहिये हैं और दोनों के बीच संतुलन आवश्यक है। नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता, जब तक कि मूल ढाँचे को नुकसान न पहुँचे। न्यायिक समीक्षा को संविधान का एक बुनियादी लक्षण माना गया और इसे समाप्त करने वाले प्रावधानों को अमान्य कर दिया गया। महत्व: इस फैसले ने संसद की शक्ति पर अंकुश लगाया और संविधान के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका को मज़बूत किया।[8]

मेनका गांधी वाद

मेनका गांधी केस मुख्यतः एक पासपोर्ट जब्ती के कार्यपालिका के आदेश के विरुद्ध वाद था। १९७६ में मेनका गांधी को पासपोर्ट जारी किया गया तथा जुलाई १९७७ को वापस जमा करने का आदेश जारी किया गया। मेनका गांधी ने पूछा कि हमें कारण बताया जाए इस जब्ती का। संबंधित प्राधिकरण ने कहा कि यह आम जन के हित में उठाया गया कदम है। मेनका गांधी ने अनुच्छेद ३२ के तहत इस आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती देते हुए निम्न प्रश्न उठाए।[9] क्या मूल अधिकार निरपेक्ष हैं तथा उनका विस्तार कहाँ तक है? क्या विदेश यात्रा अनुच्छेद २१ में शामिल है? अनुच्छेद १४, १९ एवं २१ क्या आपस में अन्तर्संबंधित हैं? कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का आशय क्या है? पासपोर्ट अधिनियम की धारा १०(३)(ग) क्या संवैधानिक है? क्या जब्ती

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 2, Issue 1, May 2023 Impact Factor: 7.301

का आदेश प्राकृतिक न्याय के अनुकूल है? उक्त के संदर्भ में विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मूल अधिकार के अनुच्छेद २१ में विदेश यात्रा सम्मिलित है तथा १९(१) में प्रदत्त विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भौगोलिक सीमा से प्रतिबंधित नहीं की जा सकती है। ए. के. गोपालन केस में दिए गए फैसले को रद्द करते हुए कहा कि मूल अधिकार आपस में जुड़े हुए हैं। साथ ही स्वर्णिम त्रिभुज का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए कहा कि अनुच्छेद १४, १९ एवं २१ आपस में मिलकर एक स्वर्णिम त्रिभुज का निर्माण करते हैं तथा आपस में अन्तर्संबंधित हैं। कानून की उचित प्रक्रिया का तात्पर्य न्यायसंगत, निष्पक्ष व पारदर्शी है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पीड़ित पक्ष को सुनवाई का मौका न देना प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध है तथा पासपोर्ट अधिनियम की उक्त धारा को असंवैधानिक घोषित कर दिया।[10]

इंद्रा साहनी वाद

बी. पी. मंडल की सिफारिश से अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु वी. पी. सिंह सरकार ने २७% आरक्षण लागू किया। इसी मंडल आयोग की सिफारिश में दस प्रतिशत आरक्षण की चर्चा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग हेतु देने का प्रावधान किया गया। इसी मुद्दे को लेकर एक याचिका सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल की गई जिसमें पिछड़ेपन का आधार जाति को मानने का विरोध किया गया, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया।[11]

एम नागराज वाद

एम नागराज मामला (२००६) भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक ऐतिहासिक फैसला है, जिसने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में आरक्षण को वैध ठहराया, लेकिन इसके साथ ही तीन महत्वपूर्ण शर्तें भी लगाईं। ये शर्तें यह हैं कि राज्य को यह साबित करना होगा कि संबंधित वर्ग पिछड़ा है, उस वर्ग का प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है, और आरक्षण से प्रशासनिक दक्षता प्रभावित नहीं होगी।[12]

DOI: 10.48175/IJARSCT-3601A

पी.यू.सी.एल. वाद

यह मुकदमा पी.यू.सी.एल. ने टेलीफोन टेपिंग के विरुद्ध दायर किया था जिसका आधार सी.बी.आई. की रिपोर्ट थी जिसमें कुछ राजनेताओं के फोन को टेप किया गया था। इस फोन टेपिंग में एम.टी.एन.एल. द्वारा प्रक्रियागत खामी बरती गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि फोन टेपिंग करना निजता के अधिकार का उल्लंघन है।[13]

विशाखा वाद

विशाखा बनाम राजस्थान वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसी भी व्यक्ति को व्यापार, पेशा या कार्य करने हेतु सुरक्षा आवश्यक है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचने का मौलिक अधिकार व्यक्ति को है। कार्यस्थल पर लैंगिक समानता का वातावरण बनाया जाना चाहिए। इसके हेतु विशाखा नाम से सर्वोच्च न्यायालय ने दिशा-निर्देश जारी किए, जिसके लिए अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दस्तावेज सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू. का सहारा लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने यौन उत्पीड़न को परिभाषित कर दिया।[14] मुद्दा यह था कि राजस्थान के भतरी गाँव की भंवरी देवी महिला विकास संगठन की कार्यकर्त्री थी। वह बाल विवाह के प्रति लोगों को सचेत कर रही थी। नवजात बच्ची के विवाह को रोका तो जमींदार गुज्जर वर्ग नाराज होकर भंवरी देवी को सबक सिखाने के लिए गैंगरेप कर दिया। आरोपी जिला अदालतों से छूट गए। परिणामतः नैना कपूर ने अपने एन.जी.ओ. साक्षी व अन्य महिला संगठनों के साथ मिलकर पी.आई.एल. सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल की, जिसकी सुनवाई मुख्य न्यायाधीश जस्टिस जे. एस. वर्मा की पीठ ने की।[15]

के. एस. पुट्टास्वामी वाद

पुट्टास्वामी ने आधार कार्ड की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी तथा कहा कि यह योजना निजता के अधिकार का उल्लंघन करती है। प्रश्न यह रखा गया कि क्या अनुच्छेद २१ में निजता का अधिकार है या नहीं।

भारत सरकार के अटॉर्नी जनरल का मत था कि यह संदिग्ध है। नौ जजों की बेंच ने अनुच्छेद २१ में निजता के अधिकार को सन्निहित माना। कहा निजता मानवीय गरिमा का गुण है। इसमें व्यक्तिगत अंतरंगता (विवाह, संतानोत्पत्ति एवं परिवार) के साथ सेक्स ओरिएंटेशन शामिल है। सभी की पहचान बिना किसी भेदभाव के सुरक्षित रहनी चाहिए। यह अधिकार प्राकृतिक है। इस अधिकार को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया से सीमित किया जा सकता है।[16]

आरूणा रामचंद्र शानबाग वाद

इस वाद में नौ जजों की बेंच ने माना कि गैर-स्वैच्छिक इच्छा मृत्यु का अधिकार न्यायालय के संरक्षण में दिया जा सकता है। इसके पहले युथेनेसिया अर्थात इच्छा मृत्यु के अधिकार को आठ जजों की बेंच ने नकार दिया था। कालांतर में कॉमन कॉज़ केस में यह माना गया कि अनुच्छेद २१ में न जीने का अधिकार शामिल है।[17]

निष्कर्ष

उपरोक्त वादों के अध्ययन से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय ने मानवाधिकारों एवं मौलिक अधिकारों को सदैव सुरक्षित रखते हुए अपने अभिभावक धर्म का निर्वहन किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त वादों के माध्यम से मौलिक अधिकारों का न केवल विस्तार किया है अपितु राज्य की मशीनरी की शक्ति के दुरुपयोग की प्रवृत्ति को प्रतिबंधित किया है।

संदर्भ सूची –

1. इंडिया, द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया (न्यू दिल्ली: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1950), आर्टिकल्स 12–35 एंड आर्टिकल 32।

DOI: 10.48175/IJARSCT-3601A

2. एम. पी. जैन, इंडियन कॉन्स्टिट्यूशनल लॉ, 8 एड. (न्यू दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस, 2018), पृ. 1025–1030।
3. स्टेट ऑफ मद्रास बनाम चंपकम दोरैराजन, ए.आई.आर. 1951 एस.सी. पृ. 226।
4. केशवानंद भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल, (1973) 4 एस.सी.सी. पृ. 225।
5. ग्रानविल ऑस्टिन, वर्किंग अ डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन: द इंडियन एक्सपीरियंस (न्यू दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999), पृ. 258–265।
6. मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (1980) 3 एस.सी.सी. पृ. 625।
7. एच. एम. सीरवाई, कॉन्स्टिट्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, 4 एड. (न्यू दिल्ली: यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, 2012), पृ. 3145–3152।
8. दुर्गा दास बसु, इंट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया, 23 एड. (न्यू दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस, 2017), पृ. 146–150।
9. मेनका गांधी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (1978) 1 एस.सी.सी. पृ. 248।
10. वी. एन. शुक्ला, कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया, एडिटेड बाय महेंद्र पी. सिंह, 13 एड. (लखनऊ: ईस्टर्न बुक कंपनी, 2017), पृ. 356–360।
11. इंद्रा साहनी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 1992 सप्प (3) एस.सी.सी. पृ. 217।
12. एम. नागराज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2006) 8 एस.सी.सी. पृ. 212।
13. पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी.यू.सी.एल.) बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (1997) 1 एस.सी.सी. पृ. 301।
14. विशाखा बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान, (1997) 6 एस.सी.सी. पृ. 241।
15. उपेंद्र बक्सी, द इंडियन सुप्रीम कोर्ट एंड पॉलिटिक्स (न्यू दिल्ली: ईस्टर्न बुक कंपनी, 1980), पृ. 189–192।

16. जस्टिस के. एस. पुट्टास्वामी (रिटायर्ड) बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2017) 10 एस.सी.सी. पृ. 1।

17. अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2011) 4 एस.सी.सी. 454; सी ऑल्सो कॉमन कॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2018) 5 एस.सी.सी. पृ. 1-2।